सृष्टि प्रक्रिया के वैदिक पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष 'दश वाद और ब्रह्मसिद्धान्त'

डॉ. प्रवीण पण्ड्या
जालोर

पूर्वार्ध

(१)

सृष्टि की व्याख्या दर्शन है और संस्कृति इसी दर्शन या दृष्टि के आधार पर बनती है। यह संस्कृति दर्शन का अधिकतम विस्तार है और दर्शन उस विस्तृत संस्कृति का बीज है। पण्डित मधुसूदन ओझा सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में एक सिद्धान्त और दश वादों की स्थापना करते हैं। इसका क्या महत्त्व है, इस पर विचार करें तो हमें षट् दर्शन की ओर दृष्टिपात करना होगा। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त को षट् दर्शन कहा जाता है। ओझा जी के अनुसार यह आधुनिक समझ है और इसका स्रोत भारतीय ज्ञानपरम्परा को ठीक से नहीं समझना है—

अद्यत्वे तु न्यायवैशेषिकसांख्ययोगमीमांसाः।
वेदान्तं च ब्रुवते दर्शनषट्कं तदज्ञानात्[1] ।।

षट् दर्शनों को दो अन्य विकल्पों में भी बताया जाता है और वे भी हमारे समीपवर्ती समय की समझ है—

लोकायतमतमन्यद् वैनाशिकमतचतुष्टयं चान्यत् ।
स्याद्वादिकद्वयं यद्वैशेषिकमेकमस्ति मतम्[2] ।।
प्राधानिकं चतुर्धा शारीरकमष्टधा चेति ।
षड्दर्शनं प्रसिद्धमर्वाक्कालिकं सर्वम्[3] ।।

लोकायत, बौद्ध, जैन, वैशेषिक, सांख्य और वेदान्त को षड् दर्शन कहने में ओझा जी सहमत नहीं हैं। ओझा जी के अनुसार न्याय, मीमांसा और वेदान्त दर्शन नहीं है। न्याय तर्कशास्त्र है, मीमांसा और वेदान्त वाक्यशास्त्र हैं। मीमांसा कर्म में वाक्यार्थ को बताता है और उत्तर मीमांसा ब्रह्म में वाक्यार्थ का अनुसंधान करता है—

कर्मोपास्तिब्रह्मेत्येवं काण्डत्रयं वेदे।
तद्वाक्यार्थविचारन्यायो मीमांसनं नाम।।

विंशतिलक्षण्या सा मीमांसा दर्शिता त्रिभिर्ग्रन्थैः
आचार्यभेदतोऽत्र त्रैविध्यं भ्रान्तमेकशास्त्रं तत्।।

ब्रह्म च भक्तिः कर्म च शास्त्रार्थत्वेन चिन्तितास्तत्र।
व्यापकविश्वविचारो नायं तस्मान्न दर्शनं तत् तत्।।

यज्ञादीनि मनुष्याः स्वर्गार्थं यानि कर्माणि।
कुर्वन्ति तत्र विधिवाक्-तात्पर्यं पूर्वमीमांसा।।

यदपरमुक्त्यै चेश्वरमुपासते तत्र तद्विधयः।
उपपाद्यन्ते यस्यां सा मध्या भक्तिमीमांसा।।

उपनिषदां वाक्यानां ब्रह्मणि तात्पर्यमस्ति नान्यत्र।
इति वक्ति भिक्षुसूत्रं तत्र जगन्मूलचिन्तनं गौणम्।।

एवमपीदं ब्रह्माद्वैतं विश्वस्य मूलमिह शास्त्रे।
उपदिष्टमस्ति तस्माच्छारीरकदर्शनं भ्रमाद् ब्रुवते।।

प्रासङ्गिकेन विश्वोत्पत्तिविचारेण दर्शनत्वं चेत्।
शब्दाद् विश्वोत्पत्तिं वदतः शास्त्रस्य दर्शनत्वं स्यात्।।

वेदान्त उपनिषदो विज्ञानं ब्रह्मणः श्रौतम्।
स्मार्तानि दर्शनानि तु षडतः शारीरकं नैषु[4] ।।

ओझा जी की मान्यता है कि षड् दर्शन स्मार्त हैं, जबकि वेदान्त श्रौत ब्रह्मविज्ञान है। स्मार्त दर्शनों के समवाय में श्रौत विज्ञान को नहीं गिना जा सकता। स्मार्त दर्शन वेदोत्तर काल में भारतीय मनीषियों की निर्मितियाँ हैं। षड् दर्शन और दशवाद में यह आधारभूत अन्तर है। दश वाद वैदिककालिक विचार दृष्टियाँ हैं और षड् दर्शन परवर्ती समय में अधिगत विचार दृष्टियाँ हैं। ये दो मुख्य तात्पर्य हैं—

१. इन वादों का स्रोत वेद है, स्मार्त चिन्तन नहीं। इन पर विचार के लिए मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद के संदर्भ आधारभूत हैं।

२. षड् दर्शन में इन वादों का प्रभाव हो सकता है और उनका स्वतन्त्र विकास भी। इन दोनों पर विचार करना उचित है।

ओझा जी स्वयं ऐसा करते हैं। इन दशवादों में पहला वाद है—सदसद्वाद। इसके तीन पक्ष हैं। पहला असद्वाद। असद्वाद तैत्तिरीयशाखानुयायियों का है। दूसरा सदसद्वाद याज्ञवल्क्यमतानुयायियों का है। हम यह जानते ही हैं कि यजुर्वेद

की दो धाराएँ हैं। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयों का है और शुक्ल यजुर्वेद याज्ञवल्क्यों की धारा है। काण्व और माध्यन्दिन दोनों शतपथों में तैत्तिरीयों का पदे पदे खण्डन है। कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद का मुख्य अन्तर क्या है, यह अनेक तरह से बताया गया है। सृष्टि या वेद की असद्वादी और सदसद्वादी व्याख्या के रूप में क्रमशः कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेद पर विचार करने का महत्त्वपूर्ण सूत्र पण्डित ओझा देते हैं। (यजुर्वेद कर्मकाण्ड है, तो इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि वह सृष्टि प्रक्रिया का वेद है!) आरुणेयों की दृष्टि सद्वाद की है। याज्ञवल्क्यों ने सद् और असद् के भेद की दृष्टि को असमञ्जस माना—

सदेव नाग्रेप्यसदेव नाग्रे तत् सत् पुरासीद् यदसत् तदासीत् ।
असच्च सच्चेति भिद्यतेऽर्थस्तदित्थमाहुः किल याज्ञवल्क्याः[5]**।।**

सद्वाद और असद्वाद के बीज से क्रमशः ब्राह्मण और श्रमण दर्शन विकसित होते हैं। ये दोनों परम्पराएँ वैदिक हैं। अन्तर इतना ही है, कि एक वेद अर्थात् सृष्टि के अस्तित्व को स्वीकारती है और दूसरी अस्वीकार करती है। विचार के इस स्तर पर यह जानने को मिलता है, कि नास्तिको वेदनिन्दकः का तात्पर्य वस्तुतः संसार को मिथ्या मानना है। संसार को स्वीकारने वाला आस्तिक है। यहाँ हम सृष्टि के अर्थ में संसार शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, अन्यथा यह भी सिकुड़ गया है। अकेले इस वाद में वर्तमान में षड् दर्शन के रूप में रूढ तीनों विकल्पों के दर्शन समा जाते हैं और उनके चिन्तन के बीज वेद में होने का प्रतिपादन हो जाता है। ओझा जी कहते हैं कि वेद में सद् और असद् किस अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, उस पर विचार करने वाले विचारकों ने जब उन्हें भिन्न – भिन्न अर्थ में लिया, तो सदसद्वाद के सात विकल्प प्रसिद्ध हुए। ये सातों सदसद्वाद के विमर्श हैं। ये विमर्श हैं—१. प्रत्ययाद्वैतवाद २. प्रकृत्यद्वैतवाद ३. तादात्म्यवाद ४. अभिकार्यवाद ५. गुणवाद ६. सामञ्जस्यवाद ७. अक्षरवाद। प्रत्यय, प्रकृति, तादात्म्य आदि की व्याख्या पण्डित ओझा जी ने की है। इन सात विकल्पों से आप जब सद्, असद् और सदसद् को समझेंगे तो कुल इक्कीस विकल्प सदसद्वाद के हो जाते हैं। सदसद्वाद पर ओझा जी का स्वतन्त्र ग्रन्थ मुझे उपलब्ध नहीं हुआ। किन्तु दशवादरहस्य में इसकी पर्याप्त व्याख्या है। इसकी सांगोपांग चर्चा तैत्तिरीय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण की सृष्टि व्याख्या के परिप्रेक्ष्य में करणीय है।

रजोवाद दूसरा वैदिक वाद है। सत्त्व और तमस् से सृष्टि के अन्य कार्य होते हैं, किन्तु उसका उद्भव रजस् से होता है—आरम्भणं तत्त्वमिहोच्यते रजः। (दशवादरहस्यम्, रजोवादः,१) सृष्टि के दो भेद हैं। रजोवाद को हम अणुवाद कह सकते हैं—रजोऽणु (दशवादरहस्यम्, रजोवादः,२) अणु दो तरह का होता है एक भूत और दूसरा देव। भूत परक्रिय है और देव स्वक्रिय। देव अणुओं में भूत अणु और भूत अणुओं में देव अणु होते हैं। इन अणुओं की सात अवस्थाएँ हैं। चूँकि उन्हें देखा जा सकता हैं, अत एव वे लोक हैं। ये दिखलायी पड़ने के कारण सात लोक हैं—मिट्टी, जल, तेज, वायु, वाक्, क्रिया, विज्ञान। इन्हें क्रमशः भूर्भुवःस्वः महः जनः तपः सत्यम् कहा जाता है। इन्हीं से तीन बड़े लोक मानने चाहिए—पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष। पृथिवी को तो हम जानते ही हैं। सूर्य को द्यौ और चन्द्र को अन्तरिक्ष कहा गया है। चन्द्र पृथिवी और सूर्य के मध्य है। प्रत्येक लोक के तीन-तीन आभ्यन्तर भेद होते हैं। ओझा जी ने अन्यत्र इन्हें मनोता के रूप में स्पष्ट किया है। सूर्य के

ज्योति, गौ और आयुः ये तीन भेद होते हैं। यहाँ सृष्टि या लोकों की उत्पत्ति अणु से बतायी है। यास्क भी कहते हैं—लोका रजांस्युच्यन्ते। (निरुक्तम्, ४.१९) दृश्य के लिए रजस् शब्द का प्रयोग यास्क से अनुमोदित है। रजोवाद द्वैतवादी है। वह सृष्टि को लोक और लोकोत्तर के भेद से देखता है। लोक रजोमय है और लोकोत्तर परोरजा है। सारा जगत् रजस् की निरन्तर परिवर्तमान और अनन्त स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म अवस्थाएँ हैं। यह रजोवाद की सृष्टि व्याख्या है—

स्थूलं च सूक्ष्मं च ततोऽतिसूक्ष्मं रजोस्ति सर्वं रजसामवस्थाः।
अश्रान्तमेताः परिवर्तमाना जगत्स्वरूपाय भवन्त्यनन्ताः[6]**।।**

ओझा जी यहाँ रजस् की अवस्थाओं की दृश्यता के स्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म—ये तीन स्तर बताते हुए दो विशेषण देते हैं—एक अश्रान्त परिवर्तमान । दूसरा, अनन्त। रजस् क्रिया है। किसी रजस् अणु की गति उसका स्वभाव स्वातन्त्र्य है और स्थिति उसका परभाव पारतन्त्र्य है। इसके विपरीत अन्य किसी का स्थिति स्वभाव और गति परभाव है—

रजो द्विधेदं गतिमत्तु किञ्चित्
स्थितिं प्रयाति क्व च पारतन्त्र्यात्।
किञ्चित् स्वभावात् स्थितिमत्तदेतत्
गतिं प्रयाति क्व च पारतन्त्र्यात्[7]**।।**

ऊपर हम अणु की द्विधता को जान चुके हैं। अणु स्थितिस्वभाव है और देव अणु गतिस्वभाव है। स्थिति में गति और गति में स्थिति के न्यूटन सिद्धान्त का बीज यहाँ अनुभव किया जा सकता है। ओझा जी कहते हैं—देवाश्च भूतानि सृष्टयः। (दशवादरहस्यम्, रजोवादः, २) देव अणु की अपनी गति है, जबकि भूत अणु परक्रिय है। रजोवाद के अनुसार इसी भूत और देव अणु को अग्नि और सोम कहा जाता है—

अग्निं वदिष्यामि गतिस्वभावं स्थितिस्वभावं तु वदामि सोमम्।
अग्नेश्च सोमाच्च परस्परेण प्रयोगतः सर्वमिदं बभूव[8] **।।**

श्रुति के 'अग्निषोमात्मकं जगत्' की यह रजोवादी व्याख्या है। चूँकि रजोवाद क्रिया या रजस् को सृष्टि का कारण मानता है, अतः वह क्रिया या गति की व्याख्या करता है। इस व्याख्यान में प्रसार-सङ्कोच, अन्तर्गति-बहिर्गति, विकास-संकोच, घन-विरल आदि अनेक व्याख्याएँ सम्मिलित हैं। सबसे बड़ा सिद्धान्त यह है कि गति और स्थिति, विकास और संकोच रूपी अग्नि और सोम को सर्वथा भिन्न रूप में नहीं देखा जा सकता —परस्परेण व्यतिषक्तरूपौ प्राणौ जगन्निर्वहतः समस्तम्। (दशवादरहस्यम्, रजोवादः, १४) पश्चिमी एकेश्वरवाद और बहुदेववाद को हम वैदिक देव-मीमांसा पर बलात् थोप देते हैं, किन्तु दोनों में आधारगत अन्तर है। जहाँ गति के कारण देवता नाम, रूप और कर्म से व्यक्त हो जाते हैं, वहाँ वे अग्नि हैं, जबकि अव्यक्तावस्था में सोम हैं। रजोवाद में रजस् के भेद करने वाले छह प्राण देवता हैं—ऋषि, पितर, देव, असुर, गन्धर्व, मानव। रजस् की यह भिन्नता सृष्टि, (लोक) है—

संयोगतोऽपि रजसा वियोगतोप्यत्र भिन्नतोदेति ।
या भिन्नता स लोकस्तद्धि रजस्तन्मयं विश्वम्[9] ।।

व्योमवाद तीसरा वैदिक वाद है। रजोवाद गति का सिद्धान्त है तो व्योमवाद उस गति के अधिष्ठान का सिद्धान्त है—

साम्नः स्वरः प्राण इतोऽन्नमापः स्वर्भूमिराकाश इति क्रमेण ।
संस्तावयन् व्योम्नि गतिः स्वमेव प्रवाहणो जैबलिराह सत्यम्[10] ।।

जिस प्रकार रजोवाद में रजस् और परोरजा का चिन्तन है, उसी प्रकार व्योमवाद में परव्योम और अपरव्योम का चिन्तन है। परोरजा, परव्योम में एकत्व है और .यह इन सभी वादों की वैदिकता है। एकत्व अमृत है, विविध आता- जाता रहता है, बदलता रहता है। आचार्य दयानन्द भार्गव कहते हैं, कि यहाँ एक से विविध आता है, विविध से एक नहीं होता है। आचार्य भार्गव एक से विविध के होने में जीवन मानते हैं और विविध के एक होने को निर्जीवता कहते हैं। रजोवाद में जो देव और भूत अणु बताए थे, व्योमवाद उन्हें आकाश या व्योम मानता है—

देवाश्च भूतानि च सर्वमेतन्नातः परं किञ्चिदिहास्ति नाम ।
ये चोभयेषां विविधा विशेषा मिथोऽन्वितास्तज्जगदेतदस्ति[11] ।।

व्योमवाद के बाद तीसरा अपरवाद है। यह वाद पर को स्वीकार नहीं करने से अपरवाद है। अपरवाद सत्ता के तीन आधार मानता है—काल, स्वभाव, कर्म। अपरवाद की मान्यता है कि जिसको हम नियति, प्रकृति या यदृच्छा कह देते हैं, वह वस्तुतः स्वभाव ही है। अपरवाद को प्रचलित भाषा में नास्तिक मत, चार्वाकमत, नियतिवाद या निपट भौतिकवाद कह सकते हैं, यद्यपि पण्डित अनन्त शर्मा इससे सहमत नहीं हैं। दशवादरहस्य के प्रामाण्य से इसे वाग्वाद कहा जा सकता है। व्योमवाद में पर और अपर दो तरह के व्योम हैं। जब केवल पर से रहित अपर व्योम को सृष्टि मान लिया जाए तो उस अपरव्योमवाद को मध्यमपद लोप से अपरवाद कहा गया—

वागेव सा व्योमपदप्रसिद्धा व्योमापरं तत् परमं च भिन्नम्।
तत्रापरं व्योम निरुक्तमेतद् वागाम्भृणी या खलु सास्ति मर्त्या[12] ।।

यह वाक् वह भी है, जिसे हम कानों से सुनते हैं, किन्तु वही नहीं है। समस्त बाह्य रूप और बाह्य अभिव्यक्तियाँ वाक् हैं। सृष्टि को उतना ही मानना वाग्वाद या अपरवाद है। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर के पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ से प्रकाशित दशवादरहस्यम् में रजोवाद शीर्षक के तहत २९ श्लोक दिए हैं, जबकि श्लोक २३ तक ही रजोवाद है। श्लोक २३से २९ तक के श्लोक तो अपरवाद के हैं। स्वभाववाद, परिणामवाद, यदृच्छावाद, नियतिवाद, प्रकृतिवाद—ये अपरवाद के आभ्यन्तर भेद हैं या इन सबमें दृष्टि अपर के ऊपर टिकी है। यह सब जगत् स्वभाव से प्रवृत्त हुआ है। चार ही तत्त्व हैं और उन वायु, तेज, जल, पृथिवी में संयोग- वियोग में कारण स्वभाव है। चेतना इन्हीं से कभी

जन्मती है और नष्ट हो जाती है—

एभ्यश्चतुर्भ्यः सहितेभ्य एव प्रोत्थाय विज्ञानघनः कदाचित् ।
तान्येव चान्वेष विनश्यतीति न प्रेत्यसंज्ञास्ति गतिश्च नास्ति ।।

देहातिरिक्तञ्च न कश्चिदात्मा लोकान्तरं नास्ति न चेश्वरोस्ति ।
प्रत्यक्षमत्रोपलभामहे यत् तदस्ति यत् काल्पनिकं न तत् सत् [13]**।।**

यह स्वभाववाद तो रजोवादी अणुवाद से आगे का चिन्तन है, कि अणुओं में संयोग-वियोग क्यों होता है और पाता है, कि यह उनका स्वभाव है। बेर पर दो काँटे लगे हैं—एक, सीधा और दूसरा, टेढ़ा। फिर बेर का फल गोल है और उसमें कीड़ा है। यह सब स्वाभाविक रूप से है, आदि स्वभाव की परिणति का प्रतिपादन अपरवाद करता है—

कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः।।

द्वौ स्तो बदर्या इह तीक्ष्णकण्टकौ ऋजुः स एकोस्ति परस्तु कुञ्चितः।
फलं पुनर्वर्तुलमत्र च कृमिः स्वभावतः सर्वमिदं प्रजायते।।

को वात्र हंसान् प्रकरोति शुक्लान् शुकांश्च को वा हरितः करोति।
को वा मयूरान् प्रकरोति चित्रान् स्वभावतः सर्वमिदं प्रजायते [14] **।।**

सन्दर्भः

1. दशवादरहस्यम् - 1/3 2.दशवादरहस्यम् - 1/1
3. दशवादरहस्यम् - 1/2 4.दशवादरहस्यम्, षड्दर्शनसमालोचना /10-18
5. दशवादरहस्यम्, सदसद्वाद / 166.दशवादरहस्यम्, रजोवादः / 11
7. दशवादरहस्यम्, रजोवादः / 128.दशवादरहस्यम्, रजोवादः / 21
9. दशवादरहस्यम्, रजोवादः / 2310.दशवादरहस्यम्, व्योमवादः / 3
11. दशवादरहस्यम्, व्योमवादः / 1312.दशवादरहस्यम्, अपरवादः / 3
13. दशवादरहस्यम्, अपरवाद, लोकायतवाद अधिकरण / 3-4
14. दशवादरहस्यम्, अपरवाद, स्वभाववाद अधिकरण / 3-4